श्रद्धांजलि

ओमप्रकाश कश्यप

# विश्वनाथ प्रताप सिंह : सामाजिक न्याय का मसीहा

विश्वनाथ प्रताप सिंह नहीं रहे. जानलेवा बीमारी के बावजूद अपने जनसरोकारों के कारण चर्चा में बने रहने वाले पूर्व प्रधानमंत्री की मौत को मुबंई पर आंतकवादी हमले की घटनाओं ने गुमनाम बना दिया. चाहें तो यह भी कह सकते हैं कि परिवर्तनकारी राजनीति की अनदेखी करने वाले मीडिया को उनकी उपेक्षा करने का बैठे-बैठाए एक मुद्दा मिल गया. लग तो वर्षों से रहा था कि वे मृत्यु के समानांतर यात्रा पर हैं, परंतु वे मौत को इतना टाल सकते हैं, यह किसी ने नहीं सोचा था. गंभीर बीमारी उन्हें बार-बार अस्पताल खींच ले जाती. और वे मृत्यु को चकमा देकर पुनः लौट आते. अजातशत्रु की भांति, जी हां अजातशत्रु की ही भांति. बरसों-बरस लंबी खिंचनेवाली बीमारी से जब बड़े-बड़ों के हौसले पस्त हो जाते हैं, वे उससे जूझते रहे. बड़ी बात यह कि घनी बीमारी भी उन्हें उनके सरोकारों से दूर नहीं कर पाई. राजनीति से दूर रहकर भी वे राजनीति में बने रहे. न उसका कीचड़ उनकी संतई को दागदार कर सका, न कोई प्रलोभन उन्हें उनके सिद्धांतों से डिगा पाया. आधुनिक बड़बोले नेताओं के पास भले मुद्दों का अकाल रहता हो. बड़े-बड़े विश्लेषक, समाजविज्ञानी राजनीति के मुद्दाविहीन हो जाने पर भले ही अफसोस जताते रहते हों, मगर विश्वनाथ प्रताप सिंह ने कभी मुद्दों का अकाल नहीं भोगा. बल्कि परिवर्तनकारी राजनीति के पैरोकार, उसके जोशभरे कार्यकर्ता, समाजकर्मी विकल्प की खोज में विश्वनाथ प्रताप सिंह के आसपास सदैव जमा रहे. उम्मीद-भरी निगाहों से उनकी ओर ताकते रहे. सच्चे मन से कामना करते रहे कि वे आगे बढ़कर विकल्प की जमीन तैयार करें. संभव हो तो नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में संभालें. खूब जानते थे कि विश्वनाथ प्रताप सिंह का शरीर अब उनका साथ नहीं देगा. भीतर ही भीतर छीजती जा रही काया में सक्रिय राजनीति के धूप-ताप सहने का सामर्थ्य अब शेष नहीं. फिर भी वे उनके इर्द-गिर्द जुटे रहते. उनके लिए विश्वनाथ प्रताप सिंह का होना, बदलाव की उम्मीद, विकल्प का बचे रहना जैसा था. वर्तमान राजनीति के मरुस्थल में सिर्फ विश्वनाथ प्रताप सिंह ही थे, जितना नैतिक आभामंडल इतना प्रखर था कि वहां जाकर कुछ न कुछ लेकर लौटने का विश्वास सदैव बना रहता था. हालांकि देश के अधिकांश सवर्णों के लिए विश्वनाथ प्रताप सिंह एक खलनायक का नाम था. एक राक्षस जिसने मंडल के दबे-छिपे जिन्न को बाहर निकाला था. अगर मंडल कमीशन की रिपोर्ट को उच्चतम न्यायालय की अनुमति नहीं मिल पाती तो विश्वनाथ प्रताप सिंह का बहुत पहले राजनीतिक निर्वासन कर दिया जाता.

और भारतीय राजनीति के लिए विश्वनाथ प्रताप सिंह क्या थे! मुझे याद है कि एक बार दूरदर्शन पर दिए गए साक्षात्कार के दौरान उनसे पूछा गया था कि मंडल कमीशन की रिपोर्ट लागू होने के वर्षों के बाद वे उसके असर का आकलन किस प्रकार कर रहे हैं? तब विश्वनाथ प्रताप सिंह ने एक रूपक के माध्यम से अपनी बात कहने की कोशिश की थी. बड़ी मासूमियत से उन्होंने बताया था कि जो पहले रेल के महज डिब्बे हुआ करते थे, आजकल इंजन बने हुए हैं. ऐसा कहते समय उनके मन में आत्मविश्वास था. वही जो उनकी कूंची के माध्यम से कैनवास पर उतर आता है. वही सहजता थी जो उनकी कविताओं में सादगी बन समाई रहती है. उन दिनों उत्तरप्रदेश में कल्याण सिंह और बिहार में संभवतः लालू अथवा उनकी राबड़ी देवी की सरकारें थीं. देश के अन्य राज्यों में भी पिछड़े वर्ग के मंत्री-मुख्यमंत्री सत्ता में थे. सभी पार्टियां जान चुकी थीं कि दलित और पिछड़ों की संगति-सहमति के बिना सत्ता-शिखर तक पहुंच पाना असंभव है. इसलिए कुछ पार्टियां सीधे-सीधे अपनी जिम्मेदारी उनके हाथों में सौंप चुकी थीं, जबकि कुछ ऐसे मुखौटों से काम चलाना चाहती थीं, जो जनता को भुलावे में रख सकें. ताकि उनपर दलित एवं पिछड़ा वर्ग हितैषी होने का आभास बना रहे और बाकी वर्ग भी प्रभामंडल में रमे रहें. विश्वनाथ प्रताप सिंह दलितों और पिछड़ों को एक मंच पर देखना चाहते थे. इसके लिए वे आजीवन प्रयास भी करते रहे. मगर इसको भारतीय राजनीति की अवसरवादिता कहें या उसका अनिश्चित चरित्र. दलित और पिछड़े एक मंच पर आना तो दूर, उनके अपने भीतर ही इतने टापू बनते चले गए, जिनसे सामाजिक न्याय का वह नारा ही अर्थहीन हो गया, जो कभी परिवर्तनकारी राजनीति का मूलमंत्र हुआ करता था.

वैसे विश्वनाथ प्रताप सिंह का अपना जीवन भी कम हलचल-भरा नहीं था. लोग उन्हें राजा मांडा भले कहा करते हों, मगर राजसत्ता को उन्होंने कभी अपने दिलोदिमाग पर सवार नहीं होने दिया. 25 जून, 1931 को दहिया रियासत के जमींदार परिवार में जन्मे विश्वनाथ प्रताप सिंह पिता राजबहादुर रामगोपाल सिंह के पांच पुत्रों में सबसे छोटे थे. परिवार गहरवार राजपूतों में से आता था. दहिया की पड़ोसी रियासत मांडा के तत्कालीन राजा भगवती प्रसाद सिंह की कोई संतान न होने के कारण 1936 में विश्वनाथ प्रताप सिंह को उन्होंने गोद ले लिया था. उसके बाद राजा भगवती प्रसाद सिंह तो केवल चार वर्ष जी सके. 1941 में दस वर्ष के दत्तक युवराज विश्वनाथ प्रताप सिंह को राजा मांडा की गद्दी सौंप दी गई. उंगली पकड़ने की उम्र में दूसरों पर शासन करना, नेतृत्व के नाम पर स्वार्थी परिजनों, सरदारों के हाथ की कठपुतली बने रहना, इसे राजशाही की शान माना जाता था. विश्वनाथ प्रताप सिंह

व्यवस्था के इस मखौल को समझ चुके थे. अबोध उम्र में राजा का ताज पहनना तो जरूरी था. मगर जैसे-जैसे होश आता गया, उनका विदेहत्व बढ़ता ही गया. उन दिनों पूरे देश में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध माहौल बना हुआ था. जमींदारी प्रथा उठने के कगार पर थी.

दत्तक होने का जो एहसास बचपन में जन्मा वह आजीवन बना रहा. जमींदार परिवार में जन्म लेना और तत्कालीन राजा मांडा द्वारा गोद लिया जाना विश्वनाथ प्रताप सिंह का अपना चुनाव नहीं था. वह चुनाव करने की स्थिति में भी नहीं थे. लेकिन उन्हें यह बोध निरंतर बना रहा कि उनको जो प्राप्त हुआ है, उसके वे नैसर्गिक अधिकारी नहीं हैं, बल्कि किसी और के अभाव का लाभ उठा रहे है. दूसरे की अमानत को संभालने के एहसास ने ही उनके मन में नए वातावरण के प्रति परायेपन का बोध पैदा किया. वे खुद को उस माहौल के प्रति कभी सहज न कर सके. उन्होंने लिखा भी–

'मैं उस परिवार में जाकर स्वयं को बहुत ही असुरक्षित अनुभव करता था. मेरी समस्या थी कि वहां के लोग मुझे कैसे स्वीकार करेंगे. मुझे कभी लगता कि मैं उनके परिवार का सदस्य बन चुका हूं. कभी लगता कि यह सब नकली है और इसके लिए मुझे बाकी दुनिया को जवाब देना होगा.'

सुप्रसिद्ध इतिहासकार सुमित सरकार ने भी माना है कि विश्वनाथ प्रताप सिंह का बचपन घोर जटिलताओं एवं परस्पर विरोधी विकास से भरपूर था. यही सच भी है. इसी ने उन्हें स्वभाव से अंतर्मुखी बनाया. बचपन के इन्हीं विरोधाभासों के साथ एक ओर तो वे सक्रिय राजनीति में विभिन्न पदों पर शोभायमान रहे. वहीं दूसरी ओर अपनी तुनकमिजाजी भी बनाए रखी. बचपन के संस्कार, राजा का पद उन्हें राजनीति में स्थापित होने का अवसर प्रदान करते रहे. और माहौल के प्रति परायेपन का एहसास, यह अनुभूति के वे दूसरे के अभाव का सुख भोग रहे हैं, उन्हें उस वातावरण से दूर भागने के लिए उकसाता रहा. बाहरी दुनिया से हारा, उकताया हुआ उनका मन अपने में लौटता तो कभी कविता बनकर फूटने लगता और कभी कूंची के माध्यम से कैनवास संवारने लगता. उनके लिए एक ओर तो अवसरों के दरवाजे हमेशा खुले रहे, दूसरी ओर जब भी अवसर मिला वे राजनीति और पद को ठुकराकर आगे बढ़ते गए. उस समय न पद की ऊंचाई उन्हें रोक पाई न घर-परिवार और शुभाकांक्षियों के आग्रह. अपने मन, अपने नैतिकताबोध के सिवाय वे किसी ओर के आगे कभी नमित नहीं हुए. उनके भीतर का असंतोष उनसे हमेशा कुछ न कुछ ऐसा कराता रहा, जो उस परिवेश में रहने वाले लोगों के लिए सर्वथा नया और अनोखा था.

विनोबा भावे के भूदान आंदोलन में उन्होंने न केवल सक्रिय हिस्सेदारी की, बल्कि अपनी दो सौ बीघा उपजाऊ जमीन एक झटके में दान कर दी. मांडा तक सड़क मार्ग बनाने के लिए श्रमदान में बढ़चढ़कर हिस्सा लिया. गरीबों और अभावग्रस्त बच्चों की शिक्षा के लिए कोरांव में एक स्कूल की स्थापना की, उसके लिए सिर पर ईंटें भी ढोयीं. उस स्कूल की नींव विनोबा भावे ने रखी थी. बाद में वे कई साल तक वहां बच्चों को पढ़ाते रहे. जिस जमींदार परिवार में वे जन्मे थे, वहां जमीन से अधिकार छोड़ देना एक पागलपन ही था, मगर उन्होंने जब जो जैसा सही समझा, बिना किसी संकोच अथवा परवाह के उसपर अमल भी किया. जो किया पूरे मन से और समर्पण भाव के साथ किया. फिर चाहे वह राजनीति हो अथवा कविता; या फिर चित्रकारी. राजनीति की तो उसके लंद-फंद से दूर रहे, चित्रकारी और कविता के क्षेत्र में उतरे तो वहां भी एकाकी साधना को प्राथमिकता दी. कभी किसी तथाकथित 'बड़े' साहित्यकार अथवा चित्रकार से मान्यता की उम्मीद नहीं रखी.

यह उनके राजसी संस्कार ही थे, जिसने उन्हें नेतृत्व का गुण दिया. विद्यार्थी जीवन में ही उन्हें कॉलेज अध्यक्ष चुन लिया गया था. इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद उन्होंने पूना विश्वविद्यालय से वकालत की डिग्री प्राप्त की. राजनीति से जुड़े और 1980 में देश के सबसे बड़े प्रांत उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री पद तक पहुंचे. उन्हें मुख्यमंत्री पद सौंपने वाली इंदिरा गांधी थीं. जिनका वे हमेशा ही सम्मान करते रहे. आगे चलकर राजीव गांधी और कांग्रेस के साथ उनके संबंध खराब हुए, मगर इंदिरा गांधी के प्रति उनके मन में सम्मान हमेशा ही बना रहा. जिन दिनों चुनावों में नेता कारों के काफिले के साथ चला करते थे, उनके आगे-पीछे अंगरक्षकों की फौज हुआ करती थी, विश्वनाथ प्रताप सिंह अपने कार्यकर्ताओं और समर्थकों को साइकिल अथवा मोटरसाइकिल पर चलने की सलाह देते. वे खुद भी बस में सफर करते. मगर मुख्यमंत्री का पद उन्हें दो करीब दो वर्ष ही बांध सका. उन दिनों प्रदेश में डाकुओं का आतंक था. प्रदेश के मुखिया के रूप में विश्वनाथ प्रताप सिंह ने उसे अपराधमुक्त करने का बीड़ा उठाया. पुलिस को कामयाबी भी हाथ लगी. प्रतिक्रियास्वरूप डाकुओं ने एक गांव पर हमलाकर सोलह निर्दोष लोगों को गोली से उड़ा दिया. मारे गए लोगों में छह दलित थे. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने इसको अपनी असफलता माना और मर्माहत होकर मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया. वह राजनीति का ऐसा दौर था, जब नेताओं में आत्मा नाम की चीज हुआ करती थी. राजनीति में मूल्य नाम की चीज बची हुई

थी. तब असफलता की जिम्मेदारी ओढ़ना व्यक्तिगत कमजोरी न होकर नैतिकता का तकाजा माना जाता था. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने पद से इस्तीफा जरूर दिया, मगर अपनी जिम्मेदारियों से मुंह नहीं मोड़ा था. दस्यु-समस्या समाज की सामाजिक-आर्थिक विषमताओं की उपज है, सिर्फ हथियार के दम पर उसका हल नहीं खोजा जा सकता—इसी मान्यता के चलते वे इस समस्या के निदान के लिए आगे भी काम करते रहे. साल-भर बाद उस समय उम्मीद की किरण नजर आने लगी, जब कई खतरनाक डाकुओं ने समाज की मुख्यधारा में लौटने की प्रतीज्ञा करते हुए, अपने हथियार उनके आगे डाल दिए. अंहिसा को एक बार फिर हिंसा पर जीत मिली.

भारतीय राजनीति में वह उथल-पुथल का दौर था. इंदिरा गांधी ने विश्वनाथ प्रताप सिंह को केंद्र में बुला लिया जहां वे महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे. वे संजय गांधी के पसंदीदा नेताओं में से थे. वही उन्हें केंद्र में लाने का माध्यम बने थे. इंदिरा गांधी की हत्या के बाद जब राजीव गांधी की सरकार बनी तब भी विश्वनाथ प्रताप सिंह पर कांग्रेस का भरोसा बना रहा. उन्होंने उन्हें अपने मंत्रीमंडल में वित्त मंत्री की जगह दी. युवा और स्वप्नदृष्टा प्रधानमंत्री के रूप में राजीव गांधी आर्थिक सुधारों को गति देना चाहते थे. अपने नेता की इच्छा का सम्मान करते हुए विश्वनाथ प्रताप सिंह ने लाइसेंस राज को खत्म करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया. सोने की तस्करी को रोकने के लिए उन्होंने उसके आयात पर कर-कटौती को प्राथमिकता दी. तस्करी के सोने की बरामदगी दिखाने वाले पुलिसकर्मियों को उन्होंने बरामद सोने का एक हिस्सा पुरस्कार-स्वरूप देने की घोषणा की, जिसका अनुकूल असर हुआ. यही नहीं गैरकानूनी कर-वंचन पर अंकुश लगाने के लिए उन्होंने वित्त मंत्रालय के प्रवर्त्तन निदेशालय को अतिरिक्त शक्तियां सौंप दीं. उनके वित्तमंत्रित्व काल में कर चोरी के आरोपियों पर आयकर के छापे पड़ने लगे. रसूख वाले लोगों को भी नहीं बख्शा गया. लेकिन धीरूभाई अंबानी और अमिताभ बच्चन पर आयकर की दबिश पड़ने से सरकार हिल उठी. ये कांग्रेस के करीबियों में माने जाते थे. राजीव गांधी पर दबाव पड़ने लगा. फिर जो हुआ वह हमारे सामने की राजनीति का हिस्सा है.

राजीव गांधी ने पहले तो उनका मंत्रालय बदला. विश्वनाथ प्रताप सिंह को यह अपनी कर्तव्यनिष्ठा पर हमला महसूस हुआ. रक्षा मंत्री के पद पर रहते हुए भी उन्होंने विद्रोही तेवर बनाए रखे. नतीजा बोफोर्स और पनडुब्बी सौदों में दलाली के मामले सामने आए. प्रधानमंत्री कार्यालय पर सीधे दलाली में लिप्त होने के गंभीर आरोप लगे. क्षुब्ध होकर राजीव गांधी ने उनसे न केवल मंत्रीपद छीन लिया, बल्कि कांग्रेस से निकाल बाहर किया. इससे नुकसान राजीव गांधी का ही अधिक हुआ. उनकी मि. क्लीन की छवि दागदार बन गई. विश्वनाथ प्रताप सिंह को जनता ने ईमानदार और नीतिवान नेता मान लिया. उससे कुछ साल पहले ही जनता पार्टी के रूप में कांग्रेस की वैकल्पिक सरकार देने का प्रयोग असफल हो चुका था. उसके घटक रहे वामपंथी और जनसंघी अब परस्पर विरोधी खेमे में थे. लेकिन राजीव सरकार के विरुद्ध बढ़ रहे जनाक्रोश का लाभ उठाने के लिए राजनीति ने उन्हें फिर एक घोड़े का सवार बना दिया. पिछले परिवर्तन के नायक जयप्रकाश नारायण रहे थे. इस बार बागडोर विश्वनाथ प्रताप सिंह के हाथों में थी. उन्होंने देश भर में जाकर सरकार और ऊंचे पदों पर बैठे लोगों के भ्रष्टाचार को उजागर करना आरंभ कर दिया. आजाद भारत में यह अपने तरह की पहली घटना थी. विश्वनाथ प्रताप सिंह की निष्ठा और साफगोई लोगों को जयप्रकाश नारायण की याद आने लगी. जनता ने उन्हें हाथों-हाथ लिया.

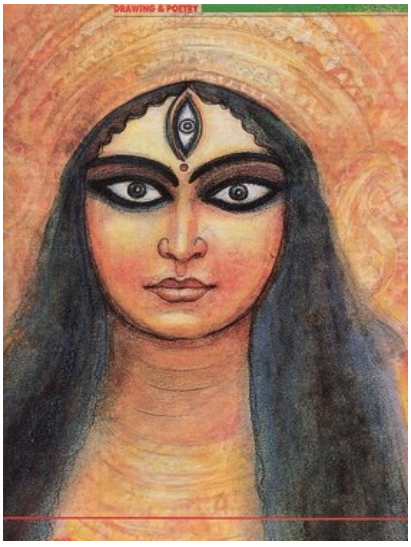

विश्वनाथ प्रताप सिंह की एक पेंटिंग

चुनाव परिणाम घोषित हुए तो विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाला जनता दल सरकार बनाने की स्थिति में था. सरकार कोई भी हो, मगर प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह न बन पाएं, यह सुनिश्चित करने के लिए पूंजीपतियों ने अपने घोड़े दौड़ा दिए. बताते हैं कि जिन दिनों देश के दसवें प्रधानमंत्री का चयन हो रहा था, देश का एक धनकुबेर दिल्ली के पांच सितारा होटल में अपनी थैली खोले बैठा था. कि किसी भी तरह नेताओं को खरीदकर उन्हें विश्वनाथ प्रताप सिंह के विरुद्ध ले जा सके. पहले जाट नेता देवीलाल को प्रधानमंत्री चुना गया. मगर उस वजुर्ग नेता के मन में कहीं न कहीं अपनी मिट्टी और जनादेश के प्रति लगाव बाकी था. जानते थे कि जनता ने प्रधानमंत्री के रूप में विश्वनाथ प्रताप सिंह को ही वोट दिया है. इसलिए वे विनम्रतापूर्वक पीछे हट गए. अवसरवादी नेताओं और उस धन्नासेठ के मंसूबों पर पानी फिर गया.

यह उस धन्ना सेठ की पूंजी की हार भले मानी जाए, मगर पूंजीपति वर्ग इतनी जल्दी हार मानने वाला नहीं था. इसलिए चयन के साथ ही विश्वनाथ प्रताप सिंह को हटाने का खेल आरंभ हो चुका था. कश्मीर समस्या उन दिनों शिखर पर थी. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने जगमोहन को वहां का राज्यपाल बनाकर भेजा. उन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हुई, जिससे उनकी सरकार के ऊपर बदनामी का गहरा दाग लगा. जनता दल सरकार में गृह मंत्री मुफ्ती मोहम्मद सईद की बेटी रूबिया सईद को अपहर्ताओं के चंगुल से छुड़ाने के बदले खूंखार आंतकवादियों की रिहाई राजनीतिक मंच पर उनके जी का जंजाल बन गई. इससे जनता दल के साथ स्वार्थवश आ जुड़े दक्षिणपंथी नेताओं को सत्ता प्राप्ति के अपने वर्षों पुराने स्वप्न को सच करने तथा लोगों को भड़काकर सरकार के विरुद्ध जनमत तैयार का मौका मिल गया. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने इस दाग को सख्त प्रशासक के रूप में ख्याति अर्जित कर चुके

जगमोहन को कश्मीर का राज्यपाल बनाकर धोने की कोशिश की. उन्होंने कश्मीरी आतंकवाद पर अंकुश लगाने में कुछ हद तक कामयाबी भी प्राप्त की. लेकिन तब तक स्वार्थी पूंजीपति और राजनेता विश्वनाथ प्रताप सिंह के विरुद्ध लामबंद हो चुके थे. उनकी चुनौतियां बढ़ती ही जा रही थीं.

विश्वनाथ प्रताप सिंह के लिए चुनौतियों से गुजरना नई बात नहीं थी. अपने जीवन में वे चुनौतियों से ही तो खेलते आए थे. पिछड़ी जातियों को समानता एवं विकास की मुख्यधारा में लाने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त किए मंडल आयोग की सिफारिशें अर्से से सरकारी अलमारियों में धूल चाट रही थीं. उन्होंने उनको लागू करने की घोषणा कर दी. उस मंडल आयोग की सिफारिशें पार्टी के सवर्ण नेताओं के जातीय हितों के प्रतिकूल थीं. मगर राजनीतिक कारणों से वे उसका विरोध भी नहीं कर पा रहे थे. इन्हीं नेताओं के उकसाने पर दिल्ली समेत देश के अनेक राज्यों में छात्र आंदोलन तेज हो गया. जगह-जगह से तोड़-फोड़ और आत्मदाह की खबरें आने लगीं. सवर्ण मानसिकता के शिकार मीडिया ने उन दिनों पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया. खबरों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने और स्थिति को और विस्फोटक बनाने में कई अखबारों ने कोई कोर-कसर न छोड़ी, जिसकी आंदोलन के बाद खूब भर्त्सना हुई.

भीषण राष्ट्रीय तनाव और उथल-पुथल के उस दौर में कोई दूसरा नेता होता तो कभी का पीछे हट जाता. अपने वक्तव्य की उल्टी-सीधी व्याख्या कर उसकी जिम्मेदारी से ही मुंह मोड़ लेता. शाहबानो प्रकरण में स्वयं राजीव गांधी ने कुछ ऐसा ही किया था. मगर विश्वनाथ प्रताप सिंह तो किसी और ही मिट्टी के बने थे. कदम पीछे लेना, जिम्मेदारी से मुंह मोड़ना वे मानो जानते ही न थे. चौतरफा विरोध के बावजूद अपने निर्णय पर अडिग रहते हुए विश्वनाथ प्रताप सिंह ने संसद में ऐलान किया कि वे इन सिफारिशों के पक्ष में अपनी सरकार भी कुर्बान करने को तैयार हैं. बाद में पूरी तरह साफ हो गया कि वह आंदोलन स्वयं-स्फूर्त नहीं था. बल्कि उसके पीछे कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञ अपनी गोटियां फेंक रहे थे. वे सवर्ण मतों का ध्रुवीकरण करने तथा जनाक्रोश की लहर को अपने पक्ष में भुनाना चाहते थे. इसके लिए लालकृष्ण आडवाणी ने राममंदिर को बहाना बनाया और कमंडल यात्रा पर निकल पड़े थे. देश का तेजी से सांप्रदायिक ध्रुवीकरण होने लगा. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने एक बार फिर दृढ़ता का प्रदर्शन किया. उनके संकेत पर आडवाणी को गिरफ्तार कर लिया गया. भारतीय जनतापार्टी ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में थी. उसने तत्काल समर्थन वापस लेकर सरकार को अल्पमत में ला दिया. वामपंथियों ने सरकार को सहयोग दिया. मगर वे सरकार बचा पाने में नाकाम रहे. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य बनाए रखा. वे न रुके, न झुके. बाबरी मस्जिद पर सांप्रदायिक सोच वाले नेताओं को ललकारते हुए उन्होंने कहा भी था कि आखिर आप कैसा भारत चाहते हैं? ऐसा मजबूत भारत जिसमें विभिन्न धर्मों, मतालंबियों का सम्मान हो, उनमें आपसी समरसता और भाईचारा हो अथवा ऐसा कमजोर देश जो सांप्रदायिक दृष्टि से अलग-अलग खेमों, गुटों में बंटा हुआ हो? उनका सवाल सांप्रदायिक विखंडनवादियों के लिए एक खुली चुनौती जैसा था. सिद्धांतों के लिए सरकार को दाव पर लगा देने की वह घटना स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली थी. यह काम वही कर सकता था, जो सत्ता को अपनी चेरी समझता हो. जिसे अपने सिद्धांत कुर्सी से ज्यादा प्रिय हों. विश्वनाथ प्रताप सिंह तो ऐसा अनेक अवसरों पर सिद्ध कर चुके थे.

अपने सिद्धांतों के लिए बड़ी से बड़ी आलोचना को सह लेना, उसके बावजूद उनपर अडिग रहना, विश्वनाथ प्रताप सिंह के लिए ही संभव था. स्मरणीय है कि सरकार गिरने के बाद भी विश्वनाथ प्रताप सिंह की आलोचनाएं थमी नहीं थीं. बल्कि एक के बाद एक राजनीतिक गोटियां फेंकी जा रही थीं. देश का मीडिया उनके ऊपर आग उगल रहा था, पूरे देश में हड़ताल और आगजनी का माहौल था, विद्यार्थी आत्मदाह कर रहे थे. विश्वनाथ प्रताप सिंह अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति महोदय को सौंप चुके थे. बावजूद इसके चुनौतियों से पीठ फेर लेने के बजाय उन्होंने आगे आना उचित समझा. नवंबर 1990 की यह एक सच्ची घटना है, जिसका बड़ा ही हृदयग्राही, आंखों देखा वर्णन वेंकटेश रामकृष्णन ने विश्वनाथ प्रताप सिंह पर लिखे एक ऋद्धांजलि लेख में किया है. उस समय तक उनकी सरकार को गिरे दो सप्ताह बीत चुके थे. एक जनसभा के दौरान आंदोलनरत उग्र विद्यार्थियों की एक भीड़ को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था—

'इस मार-काट और खून-खराबे के बीच मैं तुम्हारी आंखों के सामने खड़ा हूं. यदि तुम मुझपर धावा बोलना चाहते हो तो रुको मत, आगे बढ़ो. तुम्हें इसकी अनुमति है. मुझपर वहां दूर से पत्थर फेंकने या जोर से चीखने-चिल्लाने, गालियां देने की भी जरूरत नहीं है. यहां मेरे करीब आओ, और वह सब खुलकर करो जो तुम सचमुच करना चाहते हो. मैं हर स्थिति का सामना करने के लिए तैयार हूं. मगर मुझे इस बात पर दृढ़ विश्वास है कि इस देश में समानता एवं सामाजिक न्याय के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए मैं जो भी कर रहा हूं, वही उचित है.'

रामकृष्णन आगे लिखते हैं कि—इन शब्दों के साथ ही विश्वनाथ प्रताप सिंह माइक की बगल से आगे बढ़ आए...वे दो कदम और आगे बढ़े. अब वे मंच पर, उग्र भीड़ के ठीक सामने थे. निर्भीक, अटल. उन्हें देखते ही भीड़ स्तब्ध रह गई. उस असाधारण जनसभा के बीच घोर सन्नाटा व्याप गया. उससे पहले दलित-पिछड़े वर्गों द्वारा आपसी हितों पर चर्चा करने के लिए बुलाई गई उस जनसभा पर ईंट-पत्थरों की दनादन बौछार हो रही थी. उपद्रवी आसपास के मकानों की छतों पर छिपे हुए थे. ईंट-पत्थरों और बोतलों की मार से पूर्व केंद्रीय मंत्री शरद यादव और अजीत सिंह घायल हो चुके थे. उनके सिरों पर गंभीर चोटें आई थीं. इलाज के लिए अस्पताल ले जाना पड़ा था. यही वह क्षण था जब विश्वनाथ प्रताप सिंह ने माइक संभाला और उपद्रवियों के ठीक सामने

चले आए. उन्हें देखते ही भीड़ पर अंतहीन नीरवता व्याप गई. हमलावर जहां के तहां जड़ हो गए. वह एक अद्‌भुत, अद्वितीय अवसर था. उसके बाद वह बैठक शांतिपूर्वक चली. विश्वनाथ प्रताप सिंह सहित सभी ने अपना भाषण पूरा किया.

कुछ लोग कहते हैं कि मंडल कमीशन की रिपोर्ट लागू करना, हाथों से दूर छिटकने जा रही सत्ता के लिए विश्वनाथ प्रताप सिंह बड़ा राजनीतिक दाव था, जो उन्होंने अपने प्रतिद्विंदियों को पटकनी देने के लिए चला था. मगर यह भ्रांत अवधारणा है. सत्ता विश्वनाथ प्रताप सिंह का अभीष्ट न तो थी, न आगे कभी बन पाई. उनका प्रत्येक निर्णय नैतिकता की कसौटी पर कसा हुआ होता था. हर बार किसी न किसी सैद्धांतिक कारण से उन्होंने ही सत्ता को ठुकराया था. आगे भी ऐसे कई अवसर आए जब वे दुबारा प्रधानमंत्री बन सकते थे. मगर एक बार जिस पद, जिस कुर्सी को उन्होंने छोड़ दिया, उसकी ओर फिर कभी दुबारा न देखा. सत्ता का कोई भी प्रलोभन उन्हें डिगा नहीं पाया. आजकल के नेताओं की कुर्सी के प्रति बढ़ती भूख को देखते हुए यह विलक्षण ही कहा सकता है. उनका सारा आग्रह समाज के वंचितों और शोषितों को सामाजिक न्याय के दायरे में लाना था. देवगौड़ा के प्रधानमंत्री बनने पर जब एक संपादक ने उनसे अपनी राजनीतिक विचारधारा पर टिप्पणी करने को कहा गया तो बिना सकुचाए उन्होंने कहा भी कि–

'इस राजनीति का सारा जोर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियां, अधिकार एवं प्राधिकार उन वर्गों तक पहुंचाना है, जिन्हें उनसे शताब्दियों से दूर रखा गया है. वास्तव में इस राजनीति के माध्यम से जो वे चाहते हैं और जो प्राप्त कर रहे हैं, वे उसके सच्चे अधिकारी भी हैं. इसलिए इन वर्गों के नेता अथवा प्रतिनिधि जब भी सत्ता प्राप्त करते हैं, अथवा किसी भी तरह से उसमें सहभागिता करते हैं, तो इससे मेरा बहुइच्छित-ऐतिहासिक लक्ष्य भी पूरा होता है.'

यहां एक सवाल बड़ा ही प्रासंगिक हो सकता है कि आने वाले समय में लोग क्या विश्वनाथ प्रताप सिंह को याद रखेंगे. और याद रखेंगे भी तो उसका मूल स्वरूप क्या होगा. सवर्णों का एक तबका तो उन्हें खलनायक मान ही चुका है. जिस पिछड़े वर्ग के लिए उन्होंने अपनी सरकार दाव पर लगा दी, उसके अपने नेता आपस में बंटकर इतने दल बना चुके हैं कि लगता कि बहुत जल्दी पिछड़े वोट अनगिनत हिस्सों में बंटकर अपनी ताकत ही खो बैठेंगे. विभिन्न सामाजिक न्याय के नाम पर राजनीतिक दलों के गठजोड़, उनकी आपसी स्पर्धा, उठा-पटक को वे भारतीय राजनीति की एक त्रासदी मानते थे. अपने विचारों को खुलकर व्यक्त करने में उन्हें कभी संकोच नहीं होता था. कुछ साल पहले जब मायावती ने भाजपा के साथ गठजोड़ से उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री की कुर्सी प्राप्त की तो विश्वनाथ प्रताप सिंह को बहुत आघात पहुंचा था. दिल्ली के एक बड़े अस्पताल में उपचार के दौरान इस घटना पर एक पत्रकार से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा था कि 'मायावती ने निश्चित ही दलितों में आत्मसम्मान की भावना का संचार किया है. हजारों वर्षों से दलितों की उपेक्षा होती रही है. अब उन्हें लगता है कि उनका नेतृत्व उनके अपने ही हाथों में है. उनका वोट-बैंक संगठित है. लेकिन मायावती की समस्या यह है कि वह भाजपा के साथ अपने संबंधों को लेकर स्पष्ट नहीं हैं. इस दुविधा से बाहर आते ही वह एक बड़ी ताकत बन सकती हैं.'

इसके बाद उन्होंने एक घटना का जिक्र करते हुए कहा था–''पिछली बार उत्तरप्रदेश का मुख्यमंत्री बनने पर वह मेरे पास आई थीं. तब मैंने कहा था–'मैं तुम्हें आशीर्वाद दे सकता हूं, तुम्हारी सरकार को नहीं.'' मायावती के कारण पूछने पर वे बोले–'तुमने भाजपा की मदद ली है. तुमने उन्हें अपना संरक्षक और चौकीदार नियुक्त किया है. पर ध्यान रहे, जिन्हें तुमने अपनी छत की रखवाली के लिए नियुक्त किया है, वही तुम्हारी नींव को खोखला करने वाले सिद्ध होंगे. यदि तुम अपने राजनीतिक सफर को लंबा खींचना चाहती हो तो तुम्हें अपनी सरकार एवं जनाधार में से किसी एक को चुनना होगा...तुम सरकार बना सकती हो. उसको कुछ महीने चलाओ और अल्पसंख्यकों के मुद्‌दे पर सरकार को दाव पर लगा दो. सत्ता का उपयोग हरी खाद की भांति करो. दलितों और अल्पसंख्यकों के सहयोग से सरकार की अगली फसल बंपर होगी.'

मायावती को दी गई सलाह से जाहिर होता है कि वे निरे भले भी न थे. उनमें पर्याप्त राजनीतिक कूटनीतिकता थी. यह आरोप लगाए जाने पर कि मंडल आयोग की सिफारिशें लागू करके उन्होंने जातिगत भेदभाव को बढ़ावा दिया है, विश्वनाथ प्रताप सिंह ने कहा था कि मंडल से बहुत पहले, इंदिरा गांधी के समय से ही देश जातिवादी राजनीति का शिकार रहा है. इसके लिए पार्टी नेतृत्व अपने नेताओं पर भी भरोसा नहीं करता था. मतदाताओं का जातीय रुझान भांपने के लिए गुप्तचर दलों की सहायता ली जाती थी. आज स्थिति में सिर्फ इतना अंतर आया है कि पहले सवर्णों का अधिपत्य होता था. वे छोटी जातियों को मनमाने ढंग से हांकते थे. अब लाठी छोटी और पिछड़ी जातियों के हाथों में है; और वे सवर्णों को मनमाना नाच नचा रही हैं. उस समय कोई नहीं कहता था कि देश में जातिवाद है. अब जाति के नाम पर शताब्दियों से दूसरों का हक मारते आए लोग शोर मचा रहे हैं कि जातिवाद बढ़ रहा है.' विश्वनाथ प्रताप सिंह के इस कथन में सचाई थी. भारतीय समाज की आंतरिक स्थिति के बारे में उनका गहन बोध था. सेना और देश की सुरक्षा एजेंसियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को वे आतंकवाद से भी बड़ी समस्या मानते थे. उनका कहना था कि 'आतंकवादी सिर्फ लोगों की हत्या कर सकते हैं, वे इस देश को बरबाद नहीं कर सकते, हां, सेना में व्याप्त भ्रष्टाचार यह काम बड़ी आसानी से कर सकता है.'

आज भी यह मानने वाले कम नहीं है कि विश्वनाथ प्रताप सिंह के एक पागलपन भरे निर्णय ने 'योग्य सर्वणों के हाथों से

हाथों से सताइस प्रतिशत नौकरियां एक झटके में छीन ली थीं.' इस सोच के मानने वाले यह भूल जाते हैं कि मंडल आयोग ने मापदंडों में किसी भी प्रकार की ढील न करके पिछड़ों के लिए सिर्फ नौकरियों में कुछ स्थान आरक्षित किए थे. क्योंकि उनमें से अधिकांश योग्यता के बावजूद ऊपरी स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार अथवा भाई-भतीजावाद के चलते अवसरों से वंचित रह जाते थे. डॉ. आंबेडकर ने यह काम दलितों के लिए किया था. मगर वे स्वयं जातीय दंश सहकर ऊपर उठे थे. गरीबी और अभावों के बीच से भी उन्हें गुजरना पड़ा था. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने रियासत के राजकुमार की तरह जन्म लिया. घटनावश दूसरी रियायत के राजा भी बने. राजनीति में पांव जमाने के लिए उन्हें बहुत अधिक संघर्ष भी नहीं करना पड़ा. बल्कि विद्यार्थी जीवन से लेकर प्रधानमंत्री बनने तक राजनीति खुद उनके स्वागत में मखमली कालीन बिछाती रही. सक्रिय राजनीति से संन्यास लिया तो अपनी मर्जी और स्वास्थ्य-संबंधी कारणों से. लोकतंत्र के रास्ते राजनीति में आए तो उसकी गरिमा को कभी ठेस न आने दी. सहजता, सच्चरित्रता, सदाचरण और अपने मौलिक विजन के बल पर हमेशा दूसरों के लिए नवीनतम मानक गढ़ते गए. उनके संपर्क में आने वालों को कभी नहीं लगा कि वे राजा हैं. उनके आसपास राजनीतिक अवसरवाद खूब फला-फूला, मगर उन्होंने उसको कभी आड़े नहीं आने दिया. कोई प्रलोभन उन्हें अपने सिद्धांतों से डिगा नहीं पाया. लंबे राजनीति काल में उनपर कोई दाग नहीं मिलता. हालांकि बाद में उनके आंचल को दागदार करने की पूरी कोशिश कांग्रेस और दूसरे दलों ने की थी. पर वे हर परीक्षा से बेदाग होकर बाहर आए.

वरिष्ठ पत्रकार कांचा इलैया ने विश्वनाथ प्रताप सिंह की तुलना अब्राहम लिंकन से की है, जो बिलकुल सटीक है. गोरे अब्राहम लिंकन ने सदियों से रंगभेद के शिकार होते आए काले लोगों के सम्मान और समानाधिकार के लिए संघर्ष किया था. उतनी ही पुरानी दास प्रथा को समाप्त कर उसके स्थान पर एक समतावादी समाज की स्थापना की थी. लिंकन की मौत गोरों के जातीय विद्वेष का परिणाम थी. विश्वनाथ प्रताप सिंह ने शताब्दियों से जातीय उत्पीड़न का शिकार रहे पिछड़े वर्ग के लोगों को समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास किया. उन्हें बदनाम करने, राजनीति से अपदस्थ करने में अगड़ों के कोई कोर-कसर न छोड़ी. विश्वनाथ प्रताप सिंह के प्रति अगड़ों का व्यवहार देखकर मुझे थॉमस मूर की याद आती है. सोलहवी शताब्दी के इस लेखक, विचारक और राजनयिक ने दुनिया को 'यूटोपिया' जैसा चमत्कारी शब्द दिया, जिसमें समानता-आधारित मानव समाज की झलक पहले-पहल दिखाई पड़ी थी. सम्राट हेनरी अष्ठम का सर्वाधिक भरोसेमंद मूर दरबार में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर रह चुका था. लेकिन अपनी पत्नी की दासी ऐलिजाबेथ बर्टन से विवाह रचाने की जिद में जब हेनरी ने खुद को, चर्च और उसके बनाए प्रत्येक कानून से ऊपर रखने का दावा किया तो मूर ने उसका विरोध किया. साफ कहा कि किसी परिवार अथवा सत्ता के शिखर पर विराजमान होने मात्र से किसी व्यक्ति विशेषाधिकार नहीं मिल जाते. धरती के विशाल आंगन और अनंत आसमान के नीचे कोई भी विशिष्ट और खास नहीं है. मूर को फांसी की सजा हुई. उसको तड़फाते हुए मार डाला गया. सच का समर्थन करने के बदले कुछ ऐसी ही तड़फ विश्वनाथ प्रताप सिंह को भी आजीवन झेलनी पड़ी थी. सवर्ण मानसिकता से युक्त भारतीय मीडिया हमेशा उसपर प्रहार करता रहा. यहां तक कि उनकी मौत को गुमनाम बनाने में भी उसने कोई कोर-कसर न छोड़ी.

प्रश्न उठता है कि अब जब विश्वनाथ प्रताप सिंह नहीं है तो उनके राजनीतिक सिद्धांतों का क्या होगा. उस सामाजिक न्याय की भावना क्या होगा, जिसको वे आजीवन अभिसिंचित करते रहे. सांप्रदायिकता और जाति-भेद के शिकार रहे दलित-पिछड़े और अल्पसंख्यक वर्गों की एकता का जो सपना उन्होंने देखा था, वह तो उनके जीवन में ही साकार नहीं हो पाया था. यहां तक कि दलितों और पिछड़ों में भी अलग-अलग कई खेमे बनते चले गए. क्या यह विश्वनाथ प्रताप सिंह की पराजय थी? मैं कहूंगा कि नहीं. दरअसल शताब्दियों से रेंगते आए इन लोगों ने अर्से बाद अपने बूते में चलना सीखा है. अभी तक वे अपनी प्रेरणा और अपने सपने समाज के उस वर्ग से उधार लेते रहे हैं, जिसने उनपर वर्षों तक दूसरों पर राज किया है, उनका हक मारा है. जिस दिन यह उत्पीड़ित, सर्वहारा वर्ग अपने भीतर से प्रेरणाएं उधार लेने लगेगा, जैसे ही उसके सपनों में मौलिकता का प्रवाह बढ़ेगा, उस दिन से परिवर्तनकारी राजनीति की वास्तविक शुरुआत होगी. उसी दिन विश्वनाथ प्रताप सिंह का सामाजिक न्याय का सपना साकार हो सकेगा. आइए हम भी उस दिन की प्रतीक्षा करें...आमीन!

opkaashyap@gmail.com